तित्थयर

पंचदश वर्ष : मार्च १९९२ : एकादश अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १५ : अंक ११

मार्च १९९२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

जैनधर्म के प्रभावक पुरुष एवं नारियाँ ३२३

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३४२

संकलन ३४९

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३५०

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि (१९५६) के ८ नम्बर धारा के अनुसार विवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	गणेश ललवानी
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, गणेश ललवानी, घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है ।

गणेश ललवानी

१५-३-६२ प्रकाशक का हस्ताक्षर

जैनधर्म के प्रभावक पुरुष एवं नारियाँ

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री

इस परिवर्तनशील संसारमें देश समाज राष्ट्र या धर्मके लिये जो अविस्मरणीय कार्य कर जाते हैं, उसका नाम इतिहासमें सदा अमर रहता है। जैन इतिहासमें ऐसे अनेक व्यक्तियोंके नाम मिलते है, जिन्होंने समाज और धर्मके उत्थानके महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। इस निबन्धमें आत्म साधक या सरस्वती उपासक व्यक्तियोंका उल्लेख न कर इतिहास मान्य ऐसे नर-नारियों का निर्देश प्रस्तुत किया जायेगा, जिन्होंने अपने कार्यों से जैन शासन और जैन संघको अपने जीवनकालमें पर्याप्त प्रेरणा और गति प्रदान की है। यह सार्वजनिक सत्य है कि त्यागी और समाजसेवी व्यक्तियोंके कार्य युग-युगान्तर तक जनमानस को प्रेरित करते रहते हैं। समाज, देश या राष्ट्रमें निस्पृही, सेवाभावी और कर्मठ व्यक्ति ही अपने प्रेरक कार्यों के कारण बड़े माने जाते हैं और ऐसे व्यक्तियोंके पावन चरित्र ही आनेवाली पीढ़ियोंके लिए उद्बोधक होते हैं।

जैन धर्म के प्रभावक पुरुष

जैन गणमान्य व्यक्तियोंमें सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्यका नाम आता है। इसने विशाल सेना का संगठन कर विस्तृत साम्राज्यकी स्थापना की थी। इसके राज्यकी सीमा बंगाल सागरोपकूलसे लेकर अरब समुद्र तक व्याप्त थी। वास्तविकमें भारतवर्षका यही सर्वप्रथम ऐतिहासिक सम्राट हुआ है। चन्द्रगुप्तने सम्राट होने पर अपने परोपकारी चाणक्यको मंत्रीपद दिया, पर चाणक्यने प्रधान मन्त्रित्वका भार नन्दराजाके भूतपूर्व जैन धर्मानुयायी मंत्री राक्षसको सुपुर्द करनेकी सलाह दी। चन्द्रगुप्तने राक्षसको प्रधान मंत्रित्व का भार सौंपा। प्रजा वत्सल चन्द्रगुप्तने अपने राज्यकी सुव्यवस्था की। पाटलीपुत्रमें राजधानी रहने पर भी उज्जयिनीमें भी अपनी उप-राजधानी स्थापित की।

मेगस्थनीजके उल्लेखानुसार चन्द्रगुप्त श्रमण गुरुओंकी उपासना, आहार-दान एवं प्राणिहितके कार्योंमें संलग्न रहता था। डॉ० जायसवालने लिखा है—"ये मौर्य महाराज वेदोंके कर्मकाण्डको नहीं मानते थे और न ब्राह्मणों की जातिको अपनेसे ऊँचा समझते थे। भारतके ये व्रात्य अवैदिक क्षत्रिय

सार्वकालिक साम्राज्य अक्षय धर्म विजय स्थापित करने की कामना वाले हुए।"[१]

डॉ० जायसवालके उक्त कथनसे यह ध्वनित होता है कि वे मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्तको अवैदिक अर्थात् जैन मानते हैं। लूईस-राईस[२] तथा महामहोपाध्याय आर० नरसिंहाचार्य[३]ने चन्द्रगुप्त मौर्यको जैन स्वीकार किया है और उसकी दक्षिण यात्राको यथार्थ माना है। डॉ० फ्लीट[४] और डॉ० वी० ए० स्मिथ[५]ने भी इस बातको स्वीकार किया है कि चन्द्रगुप्त राज्यको त्यागकर जैन साधु हो गया था और श्रवणवेलगोलामें उसका स्वर्गवास हुआ।

प्राचीन जैन ग्रंथ "तिलोयपण्णति"में लिखा है कि—"मुकुटधारी राजाओंमें अन्तिम राजा चन्द्रगुप्तने जिन दीक्षा धारण की।"[६] चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें उत्तर भारतमें १२ वर्षका भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा और श्रुतकेवली भद्रबाहुने १२ हजार मुनियोंके संघ सहित दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। हरिषेण कृत वृहत कथाकोष[७]में बताया है कि दीक्षित हो जानेके पश्चात् चन्द्रगुप्तका नाम विशाखाचार्य रखा गया और वे दशपूर्वियोंमें प्रथम हुए तथा भद्रबाहुने अपना उत्तराधिकार चन्द्रगुप्तको सौंपा।

राज्यभोगके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने भद्रबाहु स्वामीके चरणोंमें उज्जयिनीमें श्रमण दीक्षा ग्रहण की और उनके साथ दक्षिणकी ओर विहार किया। भद्रबाहु स्वामीने अपना अन्तिम समय जानकर श्रवणवेलगोलाके कटवप्र पर्वत पर समाधिमरण ग्रहण किया। चन्द्रगुप्तने भद्रबाहु स्वामीके साथ रहकर उनकी अन्तिम अवस्था तक सेवा की और वर्षों तक मुनि संघका संचालन करते

---

१ मौर्य साम्राज्यके इतिहास की भूमिका।

२ मैसूर एण्ड कुर्ग फ्राम द इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० २-१०

३ इन्स्क्रिप्शन्स आफ् श्रवण वेलगोला, पृ० ३६-४०

४ एपिग्राफिका इन्डिका, जिल्द ३, पृ० १७१ और इन्डियन एन्टीक्वयेरी, जिल्द २१, पृ० १५६

५ अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, तृतीय संस्करण, पृ० ७५-७६

६ मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्खं चरदि चंदगुत्तो य।
तत्तो मउडधरादु पव्वज्जं णव गेण्हंति ।। १४८१ ।। ति० प०, अ० ४

७ कथा, सं० १३१

रहे।[८] चन्द्रगुप्तका महत्व तीन बातोंकी दृष्टिसे है। पहली बात तो यह है कि चन्द्रगुप्तने आदर्श और अनुकरणीय शासन प्रबन्धकी व्यवस्था की। दूसरी बात यह है कि उसने अपनी प्रजामें सच्चाई और धार्मिक भावोंकी उन्नति की। तीसरी जो उसके जीवनकी प्रमुख विशेषता है वह यह है कि उसने सम्राटके सुख भोगनेके पश्चात् मुनिपद ग्रहण किया और वर्षों तक जैनसंघका नेतृत्व किया।

इस सन्दर्भके दूसरे महान् व्यक्ति सम्राट ऐल खारवेल हैं। ये चेदिवंशके सम्राट थे और ऐल इनका विरुद था। सोलह वर्षकी अवस्थामें इनके पिताका स्वर्गवास हो गया था और २५ वर्षकी अवस्थामें इनका राज्याभिषेक हुआ। राजा खारवेलने कलिंगकी प्राचीन राजधानी तोसलिको ही अपनी राजधानी बनाया था और उस समय उनकी प्रजाकी संख्या ३५ लाख थी। राज्य-सिंहासन पर बैठते ही खारवेलने राजधानीकी मरम्मत करायी और नये भवन, परकोटा एवं नगर द्वार आदि बनवाये। प्रजाके जल कष्टको दूर करनेके लिए उसने एक बड़े तालाबका जीर्णोद्धार कराया। राज्यके दूसरे वर्षमें उसने दिग्विजयके लिए प्रयाण किया। यहाँ यह ध्यातव्य है कि उसके दिग्विजयका उद्देश्य केवल पराक्रम प्रकट करना नहीं था अपितु धर्मवृद्धि करना था। उसने सर्वप्रथम पश्चिमीय भारत पर आक्रमण किया और आन्ध्रवंशी सातकर्णीको अधीनस्थ किया। उसने मुशिक क्षत्रियोंकी राजधानी पर अधिकार कर लिया और काश्यप क्षत्रियोंको अभय दिया। इस दिग्विजयके हर्षोपलक्षमें खारवेलने तोसलिमें खूब आनन्दोत्सव मनाया। तीसरे वर्षमें उसने प्रजाहितके अन्य कार्य किये।

चौथे वर्षमें खारवेल पुनः अपनी सेना लेकर पश्चिम भारतकी ओर चला। अबकी बार उसने राष्ट्रिक और भोजिक क्षत्रियोंसे लोहा लिया और विजयका डंका बजाता हुआ कलिंग लौट आया। कलिंग पहुँचकर खारवेलने प्रजाहितके कई कार्य किये। उसने "तनसुतियं" नामक स्थानसे एक नहर निकालकर अपनी राजधानी को हरा-भरा बना दिया।

अपने राज्यके छठ्ठे वर्षमें उसने दीन-दुखी जीवोंकी अनेक प्रकारसे सहायता की और पौर एवं जनपद संस्थाओंको अगणित अधिकार देकर प्रसन्न किया, पश्चात् दक्षिण भारतके पाण्ड्य आदि देशोंके राजाओंने स्वतः खारवेलके लिए भेंट भेजकर मैत्री स्थापित की। सातकर्णी भी निस्तेज हो चुका

[८] जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, श्रवणबेलगोला अभिलेख, सं० १

था। इस प्रकार कलिंगके आस-पास पश्चिमी और दक्षिणी भारतके लोगों पर खारवेलने अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

अनन्तर खारवेलने मगध पर आक्रमण किया, पर मगध तक न पहुँचकर गोरथगिरि तक अपना अधिकार स्थापित कर कलिंग वापस लौट गया। खारवेलके आक्रमणका समाचार पाकर यूनानका सम्राट् दमित्रियस पटनेके घेरेको छोड़कर पीछे हट गया। दमित्रियसने मथुरा, पंचाल और साकेत पर अधिकार कर लिया था। दमित्रियसके हटते ही खारवेलने मगधकी राजधानी पटना पर आक्रमण किया और नन्दकालके प्रसिद्ध राजप्रासाद "सुसंग" को घेर लिया। शुंग नृप पुष्यमित्र इस समय वृद्ध हो गये थे और उनका पुत्र वृहस्पतिमित्र मगधका प्रान्तीय शासक था। खारवेलनें उसे अपने सम्मुख नतमस्तक होने को बाध्य किया। उसनें मगधके राजकोषसे बहुमूल्य रत्नादिकके साथ कलिंगजिन की वह प्रसिद्ध मूर्ति भी वापस ले ली, जिसे नन्दराज कलिंगसे ले आये थे।

खारवेलने कलिंगमें अनेक राजभवन, देव-मन्दिर बनवाकर वास्तु विद्याकी उन्नति की। दक्ष शिल्पियोंने उनके लिये पच्चीकारी और नक्काशीके स्तम्भ बनाकर ललित कलाको उत्तेजना दी थी। खारवेलका राष्ट्रीय जीवन जिस प्रकार उन्नत और विशाल है इसी प्रकार उनका धार्मिक जीवन भी। उसने कुमारी पर्वत पर जैन ऋषि, मुनि और पण्डितगणोंका सम्मेलन बुलाया और जैनागमके पुनरुत्थानका प्रयास किया। जैन संघने उसे भिक्षुराज और खेमराज उपाधियोंसे विभूषित किया।

अन्तिम अवस्थामें खारवेल कुमारी पर्वत पर स्थित अर्हत् मन्दिरमें पहुँच गये और भक्ति भावना एवं व्रत उपवास पूर्वक अपना जीवन यापन करने लगे। उन्होंने मुनियोंके लिए गुफाएँ एवं मन्दिर बनवाये। उनके द्वारा उत्कीर्णित एक अभिलेख[१] उदयगिरि पर्वतकी हाथी गुफामें विद्यमान है। इस अभिलेखमें ई० १७० पू० वर्ष तककी घटनाएँ अंकित हैं। खारवेलने जैनसंघ और जनजीवनके लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। उनका स्वर्गवास ईसा पूर्व १५२ में हुआ।

ई० सन्की द्वितीय शताब्दीसे लेकर पाँचवी-छट्ठी शताब्दी तक गंगवंशके राजाओंने जैन शासनकी उन्नति की। गंगवंशका सम्बन्ध इक्ष्वाकुवंशके साथ था। ई० सन् की दूसरी शताब्दीके लगभग इस वंशके दो राजकुमार दक्षिण

---

[१] वही, द्वितीय भाग; अभिलेख सं० २

आये। उनके नाम दडिग और माधव थे। पेरूर नामक स्थानमें उनकी भेंट जैनाचार्य सिंहनन्दिसे हुई। सिंहनन्दिने उन दोनोंको शासन कार्यकी शिक्षा दी। एक पाषाण स्तम्भ साम्राज्य देवीके प्रवेशको रोक रहा था। अतः सिंहनन्दि की आज्ञासे माधवने उसे काट डाला। आचार्य सिंहनन्दिने उन्हें राज्यका शासक बनाते हुए उपदेश दिया—"यदि तुम अपने वचन को पूरा न करोगे, या जिन शासन को साहाय्य न दोगे, दूसरों की स्त्रियों का यदि अपहरण करोगे, मद्य-मांस का सेवन करोगे या नीचों की संगति में रहोगे, आवश्यक होने पर भी दूसरों को अपना धन नहीं दोगे और यदि युद्ध के मैदान में पीठ दिखाओगे, तो तुम्हारा वंश नष्ट हो जायगा।"[१०]

कल्लूरगुडूके इस अभिलेख में सिंहनन्दि द्वारा दिये राज्य का विस्तार भी अंकित है। दडिग ने राज्य प्राप्त कर जैन धर्म और संस्कृति के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इसने मंडलि नामक प्रमुख स्थान पर एक भव्य जिनालयका निर्माण कराया जो काष्ठ द्वारा निर्मित था। शिल्प कला की दृष्टि से यह अद्भुत था। अभिलेखों में दडिग का नाम कोङ्गुणि वर्मा भी आता है। कोङ्गुणि वर्मा या दडिग के पश्चात् उनका पुत्र लघुमाधव राजा हुआ जिसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र हरिवर्मा था। हरिवर्माने जैन शासनकी उन्नतिके लिए अनेक कार्य किये। इसी वंशमें राजा तडगाल माधवका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अविनीत हुआ। नोणा मंगल दानपत्रसे जो उसने अपने राज्यके प्रथम वर्ष में अंकित कराया था ज्ञात होता है उसने अपने परम गुरु अर्हत् विजयकीर्तिके उपदेशसे मूलसंघके चन्द्रनन्दि आदि द्वारा प्रतिष्ठापित उरणूर जिनालयको वेन्नेलकरणि गाँव और पेरुर एवानिअडिगल् जिनालय को बाहरी चुंगीका एक चौथाई कार्षापण दिया। श्री लूईस राईसने इस ताम्रपत्रका समय ४२५ ई० निश्चित किया है। अविनीत जैन धर्मका अनुयायी था यह बात मर्कारासे प्राप्त ताम्र पत्रसे भी सिद्ध होती है। अविनीत का पुत्र दुर्विनीत भी जैन शासनका प्रचारक था यह १०५५-५६ के अभिलेखसे प्रमाणित है। श्री सालेतोरने लिखा है—"हम जानते हैं कि दुर्विनीत पक्का जैन था। उसने किरातार्जुनीय पर संस्कृत टीका लिखी थी और गुणाढ्यकी बृहत् कथाका संस्कृतमें रूपान्तर किया था। अतः यह अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि उसने अपने गुरुके प्रति आदर भाव प्रगट करनेके उद्देश्यसे पूज्यपादके शब्दावतारको कन्नड़में निबद्ध किया हो और इसका मतलब यह होगा कि हमें

१० अन्तु समस्त राज्यसं···किडुगुं कुल क्रमम्—जैन शिलालेख संग्रह, द्वितीय भाग, अभिलेख सं० २७७, कल्लूरगुडु का लेख, पृ० ४१३

पूज्यपादको दुर्विनीतका समकालीन अर्थात् ५ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और छठी शताब्दीके प्रारम्भका विद्वान मानना होगा।"[११]

दुर्विनीतने कोगलि नामक स्थान पर "चेन्न पार्श्ववस्ति" नामक जिनालय का निर्माण कराया था।[१२] दुर्विनीतके पुत्र मुस्कर या मोक्कर ने "मोक्करवसति" नामक जिनालयक निर्माण कराया था।

मुस्करके पश्चात् श्री विक्रम राजा हुआ और उसके दो पुत्र हुए भू-विक्रम और शिवमार। शिवमारने श्रीचन्द्रसेनाचार्यको जिन मन्दिरके लिए एक गाँव प्रदान किया था।[१३] सालेतोरका अभिमत है कि शिवमारने प्राचीन गंग नरेशोंकी जैन परम्पराको चालू रखा था। यह प्रजावत्सल और जैन धर्मका परम उद्धारक था। इसके राज्यकालमें जैन धर्मकी पर्याप्त उन्नति हुई।

इस श्री पुरुषके पुत्र शिवमार द्वितीयने श्रवणबेलगोलाकी छोटी पहाड़ीपर एक वसति बनवायी थी। चन्द्रनाथ स्वामी वसतिसे प्राप्त एक पत्थरपर कन्नड़में शिवमारन वसति अंकित है। इस शिवमारका छोटा भाई दुग्गमार इरेयप्प था। मैसूर जिलेके हेग्गड़े देवन ताल्लुकेके हेन्बल गुप्पेके आञ्जनेय मन्दिरके निकटसे प्राप्त अभिलेखमें लिखा है कि श्री नरसिंगेरे अप्पर दुग्गमारने स्थानीय जैन मन्दिर (कोइलवसदि) को भूमि प्रदान की। अभिलेखमें वसतिको बनानेवाले कर्मकार नारायणका भी नाम लिखा है और लिखा है कि बसतिके व्ययके लिए तीन गाँवोंके आदमियोंने भी उतनी ही भूमि प्रदान की, जितनी गंग नरेशने प्रदान की। आञ्जनेय मन्दिरके शिलालेखका समय डॉ० कृष्णने ८२५ ई० निर्धारित किया।[१४] इस प्रकार ई० सन् की ८ वीं शताब्दीके कुछ काल बाद तक गंग राजाओं द्वारा जैन धर्मका विकास होता रहा।

गंग राजवंशमें मरुलका सौतेला भाई मारसिंह जैन शासनकी प्रभावना की दृष्टिसे उल्लेखनीय है। इसका राज्यकाल ई० सन् ९६१-९७४ ई० तक है। विभिन्न शिलालेखोंमें इसे सत्यवाक्य कोंगुणि वर्मा धर्म महाराजाधिराज, गंगचूड़ामणि चलदुत्तरंग, मांडलिक त्रिनेत्र, गंग विद्याधर, गंग-कन्दर्प, गंग-वज्र और गंगसिंह आदि विरुदों द्वारा उल्लिखित किया है। इन विरुदोंसे इसका यशस्वी और सम्मानित होना व्यक्त होता है। इसने मालवा पर आक्रमण कर

---

११ मिडीयेवल जैनिस्म, पृ० २२-२३

१२ संक्षिप्त जैन इतिहास, भाग ३, खण्ड २, पृ० ४७

१३ मिडीयेवल जैनिस्म, पृ० २४

१४ वही, पृ० २५

सियक परमारको पराजित किया। श्रवण वेलगोलाके कुगे ब्रह्मदेव स्तम्भपर उत्कीर्ण अभिलेखमें बताया है—

"स्समप्रति मारसिंह नृपतिर्व्विक्रान्त क···सो यत्र स्थिति—साहसोन्मद-महासामन्त-मत्ताद्विपम। · स्वामिनि पट्ट बन्ध महिमा नर्व्वि···मित्युर्व्वराचक्रं यस्य पराक्रम स्तुति परैः व्यावर्णयत्यंगकैः ॥ येनेन्द्र क्षितिवल्लभस्य जगती-राज्याभिषेक कृतः।"[१५]

अर्थात् उसने कृष्ण तृतीयके लिए गुर्जर देशको विजित किया, कृष्ण केवली शत्रु अल्लका दमन किया, विन्ध्य प्रदेशके किरातोंको छिन्न-भिन्न किया, मान्यखेटमें चक्रवर्तीके कटक की रक्षा की, शिलाहार बिज्जरसे युद्ध किया, वनवासीके राजाओंको पराजित किया। मातुरोंका दमन किया, उच्चंगीके सुदृढ़ दुर्गको हस्तगत किया, शबर राजकुमार नरगका नाश किया, चेर, चोल, पाण्डव और पल्लवोंका दमन किया एवं चालुक्य विजयादित्यका अन्त किया, उसके सैनिक कार्योंका विवरण देनेके पश्चात् बताया गया है कि उसने जिनेन्द्र देवके सिद्धान्तोंको नियोजित किया था और अनेक स्थानोंपर वसदियों और मानस्तम्भोंका निर्माण कराया था। लेख नं० १४९[१६] के अनुसार उसने पूलगिरे नामक स्थानमें एक जिन मन्दिर बनवाया जो उसीके नामपर गंगकन्दर्प जिनेन्द्र मन्दिर कहलाता था। अभिलेख संख्या—३८ में बताया है कि मारसिंहने जैन धर्मका अनुपम उद्योत किया और भक्तिके अनेक कार्य करते हुए मृत्युसे एक वर्ष पूर्व उसने राज्यका परित्याग किया। और उदासीन श्रावकके रूपमें जीवन व्यतीत किया। अन्तमें तीन दिनके सल्लेखना व्रत द्वारा बंकापुरमें अपने गुरु अजितसेन भट्टारकके चरणोंमें समाधिमरण किया। कुडलूरके[१७] दानपत्रमें बताया है कि वह जिन चरण कमलोंका मधुकर प्रतिदिन अभिषेक द्वारा समस्त दोषोंको प्रक्षालित करनेवाला गुरु भक्त, व्याकरण, तर्क, दर्शन, साहित्य आदिका पण्डित, परोपकार प्रवीण एवं गुरु भक्त था।

इतना ही नहीं मारसिंहने अनेक जैन विद्वानोंका भी संरक्षण किया था। वह बौद्धिक रत्नोंका भण्डार और प्रतिभा रूपी मोतियोंकी खान था। थोड़ेसे

---

१५ गंग चूड़ामणि गंग कन्दर्प गंगवज्र चलदुत्तरंग···जगदेकवीरम्—जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख सं० ३८, पृ० २०

१६ वही, पृ० १८-१९

१७ मैसूर आर्क्योलॉजिकल रिपोर्ट, सन् १९२१, पृ० २२-२३

ही प्रयत्न और परिश्रमसे इसने सभी विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं। वह व्याकरणका पण्डित तथा चार्वाक्, सांख्य और बौद्ध दर्शनोंके साथ तर्कशास्त्रका भी महान विद्वान था। जैन धर्ममें तो उसे वादि बंगलका पद प्राप्त था।[१८]

गंगवंशके राजाओंके अतिरिक्त कदम्बवंशके राजाओंमें काकुत्स्य वर्माके पौत्र मृगेश वर्माने पाँचवीं शताब्दीमें राज्य किया। राज्यके तीसरे वर्षमें अंकित किये गए ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है कि इसने अभिषेक, उपलेपन, पूजन, भग्न संस्कार (मरम्मत) और प्रभावनाके लिए भूमि दानमें दी थी। इसी राज्यके एक अन्य दानपत्रसे इसके द्वारा किये गये श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंके साधुओंके सम्मानका भी निर्देश प्राप्त होता है—

"अत्रपूर्वमर्हच्छालापरमपुष्कलस्थाननिवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्र-देवताभ्य एकोभागः द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्म्मकरणपरस्य श्वेतपटमहाश्रमणसंघोपभोगाय, तृतीयो निर्ग्रन्थमहाश्रमण संघोपभोगायेति। अत्र देवभाग धान्यदेव-पूजाबलिचरुदेवकर्मकरभग्नक्रिया प्रवर्त्तनाढ्यर्योपभोगाय।।"[१९]

इसी अभिलेखसे यह भी अवगत होता है कि मृगेश वर्मा उभयलोगकी दृष्टिसे प्रिय और हितकर था तथा शास्त्रोंके अर्थ और तत्त्वज्ञानके विवेचनमें उदारमति था। यह नय विनयमें कुशल, बुद्धिमान, प्रतिभाशाली, शूरवीर एवं त्यागी था।

एक अन्य ताम्रपत्रमें बताया है कि मृगेशवर्माने अपने राज्यके आठवें वर्षमें अपने स्वर्गीय पिताकी स्मृतिमें पलाशिका नगरमें एक जिनालय बनाया था और उसकी व्यवस्थाके लिए भूमि दानमें दी थी। यह दान उसने यापनियों तथा कूर्चक सम्प्रदायके नग्न साधुओंके निमित्त दिया था। इस दानके मुख्य गृहीता जैन गुरु दानकीर्ति और सेनापति जयन्त थे।[२०]

मृगेशवर्माके उत्तराधिकारी राजा रविवर्माने भी अपने पिताका अनुसरण किया। उसके एक ताम्रपत्रसे अवगत होता है कि उसने जैन धर्मके लिये एक कानून बनाया था। अभिलेख में बताया है—

सै खेः पुण्यार्थं स्वपितुम्मत्ति दत्तवान् पुरुखेटकं जिनेन्द्रमहिमा कार्यं प्रति-

---

१८ कैलाशचन्द्र शास्त्री, दक्षिण भारतमें जैनधर्म, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृ० ८४

१९ जैन शिलालेख संग्रह, द्वितीय भाग, अभिलेख सं० ९८, पृ० ७०

२० वही, द्वितीय भाग, अभिलेख सं० ९९, पृ० ७३

संवरसरंक्रमात् कष्टाह्नकृतामर्य्यादा कात्तियान्तद्धनागमात् वार्षिकांश्चतु-रोमासान् यापनीयास्तपस्विनः मु [ञ्जीरस्तु] यथान्याय्ये महिमाशेषवस्तुकन् [ ] कुमारदत्तप्रमुखाहिसूरयः अनेकाशास्त्रागमखिन्नबुद्धयः जगत्यतीता-स्सुतपोधनान्विताः गणोस्य तेषां भवति प्रमाणतः ॥ धर्मैप्सुमिज्जनिपदेस्स-नागरैः जिनेन्द्रपूजा सततं प्रणेया इति स्थितिं स्थापितवान् खीशः पलां [शिका][२१]

पलाशिका राजधानीमें राजा रविवर्माने यह नियम निर्धारित किया कि राजा मृगेश वर्माके द्वारा दामकीर्तिकी माताको दिये गये पुरखेटक ग्रामकी आयसे प्रतिवर्ष कार्तिककी पूर्णिमा तक अष्टाह्निक महोत्सव होना चाहिये। विद्वानों जिनमें प्रमुख कुमारदत्त हैं, जिन्होंने तपस्या की है और जिनका सम्प्रदाय उनके सत्कर्मोंका साक्षी है, न्यायानुसार समस्त सम्मानका उपभोग करें तथा जनपदके वासी और नागरिक नर-नारीगण निरन्तर जिनदेवकी पूजा किया करें।[२२]

रविवर्माके समान उसके भाई भानुवर्माने भी जैन धर्मकी उन्नति की। एक दानपत्रमें बताया है कि उसने पूर्णमासीके दिन जिनदेवका अभिषेक करनेके निमित्तसे जैनोंको भूमिदान दिया था। यह भूमि पलाशिकामें थी और उसे बण्डरभोजकने स्वीकार किया था।[२३]

राजा रविवर्माके पुत्र हरिवर्माने अपने राज्यकालके चतुर्थ वर्षमें एक दानपत्र प्रचलित किया था जिससे ज्ञात होता है कि उसने अपने चाचा शिवरथके उपदेशसे कूर्चक सम्प्रदायके वारिषेणाचार्यको बसन्त वाटक ग्राम दानमें दिया था। इस दानका उद्देश्य पलाशिकामें भारद्वाज वंशी सेनापति सिंहके पुत्र मृगेशवर्मा द्वारा बनवाये गये जिनालयमें वार्षिक अष्टाह्निका पूजाके अवसर पर कृताभिषेक किया जाना तथा उससे जो धन बचे उसके द्वारा समस्त सम्प्रदायको भोजन कराना आदि अभीष्ट था। इसी राजाने अपने राज्यके पांचवें वर्षमें सेन्द्रकवंश के राजा भानुशक्तिकी प्रार्थनासे धर्मात्मा पुरुषोंके उपयोगके लिए तथा एक मन्दिरकी पूजाके लिए "मरदे" नामक गांव दानमें दिया था। यह मन्दिर श्रमण सम्प्रदायका था जिसे अहरिष्टी कहते हैं और आचार्य धर्मनन्दि उसके प्रबन्धक थे।

---

२१ वही, अभिलेख सं० १००, पृ० ७५

२२ मिडियेवल जैनिज्म, पृ० ३३ तथा दक्षिण भारतमें जैनधर्म, पृ० ८६

२३ जैन शिलालेख संग्रह, द्वितीय भाग, अभिलेख सं० १०२, पृ० ७८

इस तरह कदम्ब वंशके राजाओंने जैनधर्मके अभ्युत्थानके लिए अनेक प्रयत्न किये।

राष्ट्रकूट वंशी गोविन्द तृतीयका पुत्र अमोघवर्ष जैन-धर्मका महान् उन्नायक, संरक्षक और आश्रयदाता हुआ। इसका समय ई० सन् ८१४-८७८ ई० है। जब यह सिंहासन पर आसीन हुआ तब इसकी अवस्था ६-१० वर्षकी ही थी। अतः उसके चाचा इन्द्रका पुत्र कर्कराज जो गुर्जर देशका शासक था, अमोघवर्षका अभिभावक एवं संरक्षक नियुक्त हुआ। अमोघवर्षकी बाल्यावस्थाका लाभ उठाकर साम्राज्यमें अनेक स्थानों पर विद्रोह हुए। गंग-पल्लव पाण्डव-पूर्वी चालुय आदि अधीनस्थ राजा भी विरुद्ध हो गये। ८१७ ई० में वोर्गिके विजयादित्य द्वितीय और गंगावाडिके राचमल्ल प्रथमके प्रोत्साहनमें साम्राज्यके दक्षिणी भागोंके अनेक सामन्तोंने विद्रोह किया, किन्तु कर्कराजकी स्वामिभक्ति, वीरता, बुद्धिमत्ता एवं तत्परताके कारण इन सब विद्रोहोंका दमन हुआ और ई० सन् ८२१ ई० तक स्थिति शान्त हो गयी। नवीन राजधानी मान्यखेटका निर्माण गोविन्द तृतीयने ही आरम्भ कर दिया था, किन्तु उसे राजधानीको पूरी तरह स्थानान्तरित कर देनेका समय नहीं मिला। अमोघवर्ष वयस्क हो गया था। अतः ई० सन् ८२१ में गुर्जराधिप कर्कराजने मान्यखेटमें ही अमोघवर्षका विधिवत् राज्याभिषेक किया। अमोघवर्षके प्रधान सामन्त कर्कराज और वीर सेनापति वंकेयरसने साम्राज्यको स्वचक्र और परचक्रके उपद्रवोंसे सुरक्षित रखनेका सफल प्रयत्न किया।

अमोघवर्षने राजधानीको सुन्दर प्रासादों, सरोवरों, भवनों आदिसे अलंकृत किया। ८३० ई०में बेंगिके चालुक्योंका दमन किया और पाण्ड्योंको पराजित किया। अपनी पुत्री शंखका विवाह पल्लव नन्दिवर्मन द्वितीयके साथ करके उसने पल्लवोंको मित्र बनाया। अमोघवर्षमें शासकके समस्त गुण वर्तमान थे। उसने राज्यमें पूर्णतया शान्ति स्थापित करनेका प्रयास किया।

सन् ८५१ ई० में अरब सौदागर सुलेमान भारत आया था। उसने दीर्घायु बलहरा नामसे अमोघवर्षका वर्णन किया है। इसका शासन सुचारु रूपसे व्यवस्थित था। यह विद्वानों और गुणियोंका प्रेमी था। इसकी सभामें अनेक विद्वान विद्यमान थे। वीरसेन स्वामीके पट्टशिष्य आचार्य जिनसेन स्वामी उसके राजगुरु और धर्मगुरु थे। गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराणमें अमोघवर्ष द्वारा जिनसेनको मंगलरूपमें स्वीकार किये जानेका निर्देश है।[२४] जिनसेन

---

२४ उत्तर पुराण, प्रशस्ति, पद्य ६

रचित पार्श्वाभ्युदयसे भी इसकी पुष्टि होती है। जिनसेनके गुरु वीरसेनने शक संवत् ७३८ में जब धवला टीका समाप्त की तब जगतुंग देव—गोविन्द तृतीयने सिंहासन छोड़ दिया था और बोद्दणराय या अमोघवर्ष राज्य करते थे।[२५] अमोघवर्षने दीर्घ आयु प्राप्त की थी और लगभग ६३ वर्षों तक राज्य किया। शक संवत् ७८२के ताम्रपत्रसे अवगत होता है कि इन्होंने मान्यखेटमें जैनाचार्य देवेन्द्रको दान दिया था। वह दानपत्र इनके राज्यके ५२वें वर्ष का है।[२६]

शक संवत् ७९९ के कन्हेरीकी गुफामें प्राप्त हुए अभिलेखसे ज्ञात होता है कि इनका सामन्त कपर्दि था। इन्होंने इससे कुछ पहले ही अपने पुत्र अकालवर्ष या कृष्ण द्वितीयको राज्य कार्य सौंप दिया था। कहा जाता है कि उग्रादित्यने अपने कल्याणकारक नामक वैद्यक ग्रन्थकी रचना ८०० ई० पूर्व ही कर ली थी किन्तु अमोघवर्षके आग्रह पर उन्होंने उसकी राजसभामें आकर अनेक वैद्यों एवं विद्वानोंके समक्ष मद्य-मांस निषेधका वैज्ञानिक विवेचन किया और इस ऐतिहासिक विवेचनको हिताहित अध्यायके नामसे परिशिष्ट रूपमें अपने ग्रन्थमें सम्मिलित किया। प्रसिद्ध जैन गणिताचार्य महावीराचार्यने अपना सुविदित "गणित सारसंग्रह" इसी सम्राटके आश्रयमें लिखा। यापनीय संघके आचार्य शाकटायन पाल्यकीर्तिने अपने सुविख्यात शाकटायन व्याकरण एवं उसकी अमोघ वृत्तिकी रचना की। अमोघवर्षने स्वयं ही संस्कृतमें प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक ग्रन्थ और कन्नड़में कविराजमार्ग नामक महत्त्वपूर्ण छन्द और अलंकार शास्त्र रचा। ऐतिहासिक विद्वानोंके मतानुसार अमोघवर्ष को धर्मात्मा, सदाचारी, उदार एवं श्रेष्ठ चरित्रवान् बताया गया है। यह स्याद्वाद विद्याका अत्यन्त रसिक था।

महावीराचार्यने अपने गणितसार संग्रहमें अमोघवर्षकी महिमाका विस्तार करते हुए उसे स्याद्वाद सिद्धान्तका अनुगामी कहा है।[२७] डॉ० भाण्डारकरने लिखा है—"सौराष्ट्रकूट राजाओंमें अमोघवर्ष जैनधर्मका महान् संरक्षक था और वह बात सत्य प्रतीत होती है कि उसने स्वयं जैनधर्मको धारण किया था।[२८] एक अभिलेखमें बताया है कि आश्विन महीनेकी पूर्णिमाको सर्वग्रासी चन्द्रग्रहणके अवसर पर शक संवत् ७८२ बीत चुका था। और

---

२५ धवला, प्रशस्ति, पद्य ६-९

२६ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १४८-१४९

२७ गणितसार संग्रह, संज्ञाधिकार, पद्य ३

२८ जैन कर्नाटक क०, पृ० ३२

जगतुंगके उत्तराधिकारी राजा अमोघवर्ष प्रथम राज्य करते थे। उन्होंने अपने अधीनस्थ राजकर्मचारी बंकेयकी महत्वपूर्ण सेवाके उपलक्षमें कोलुनूरमें बंकेय द्वारा स्थापित जिन मन्दिरके लिए देवेन्द्र मुनिको पूरा तलेपुर गांव और दूसरे ग्रामोंकी कुछ जमीन दानमें दी थी। ये देवेन्द्र मुनि पुस्तकगच्छ देशीयगण मूल संघके त्रैकाल्य योगीशके शिष्य थे। यह बंकेय वही है जिसके नामसे बंकापुर राजधानी बनायी गई थी। इसी बंकेयके पुत्र सामन्त लोकादित्यके समयमें जब अमोघवर्षका पुत्र कृष्ण द्वितीय राज्य करता था, गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणकी पूजा हुई थी।[२९]

कोन्नूर अभिलेख सेनापति बंकेयकी प्रार्थना पर उत्कीर्ण कराया गया था और उसने जिन मन्दिरोंके लिए दानमें भूमि प्रदान की थी। इस सम्राटकी माता महारानी गामुंडब्बे, उसकी पट्टमहिषी उमादेवी, पुत्र कृष्णराय, पुत्रियाँ शंखदेवी और चन्द्रबेलब्बे, चचेरे भाई कर्क आदि राज परिवारके साथ सभी व्यक्ति जैन धर्मानुयायी थे। अमोघवर्षके समयमें जैनधर्मकी सर्वांङ्गीण उन्नति हुई।

अज्जनन्दि या आर्यनन्दिने जैनधर्मके अभ्युत्थानके हेतु तमिल देशमें अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। इसने उत्तर आर्काट जिलेके वल्लिमलइकी और मदुरा जिलेके अन्नइमलइ, ऐवर मलइ, अलगर मलइ, करुगा लक्कुड़ी और उत्तम पालयमकी चट्टानों पर जैन मूर्तियोंका निर्माण कराया। दक्षिणकी ओर बढ़ने पर तिन्नेवेल्ली जिलेके दूरुवड़ी स्थानमें भी जैन मूर्तियोंका निर्माण कराया।[३०]

त्रावणकोर राज्यके चितराल नामक स्थानके निकट तिरुचाणट्टु नामकी पहाड़ी है। इसपर चट्टान काटकर उकेरी गयी आकृतियोंकी बहुतायत है। ये सब मूर्तियाँ जैन तीर्थंकरोंकी हैं और इनके नीचेके लेखमें लिखा है कि आर्यनन्दिने इनका निर्माण कराया। आर्यनन्दिके सम्बन्धमें उपलब्ध अभिलेखोंके अध्ययनसे यह अवगत होता है कि उनका समय ८वीं-९वीं शताब्दी है। आर्यनन्दिने तमिल देशमें जैनधर्मके विकासके हेतु अनेक मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण करायीं, गुफाओंका निर्माण कराया और जैनकलाके विकासके लिए पूर्ण प्रयास किया।

---

२९ *दक्षिण भारतमें जैनधर्म, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण,* पृ० ९२

३० वही, पृ० ३७

होयसल राजवंशके कई राजाओने जैनकला और जैनधर्मकी उन्नतिके लिए अनेक कार्य किये हैं। अङ्गडीसे प्राप्त अभिलेखमें विनयादित्य पोय्सलके कार्योंका ज्ञान प्राप्त होता है। श्रवणबेलगोलाके गंध वाणावस्तिके अभिलेखसे विनयादित्य के कार्योंका परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। बताया है—

ततो द्वारवतीनाथा पोय्सला द्वीपिलाञ्छना।
जाताश्शशपुरे तेषु विनयादित्यभूपतिः॥
स श्रीवृद्धिकरं जगज्जनहितं कृत्वाधरां पालयन्
श्वेतच्छत्र सहस्रपत्रकमले लक्ष्मीं चिरं वासयन्।
दोर्दण्डे रिपुखण्डनैकचतुरे वीरश्रियं नाटयन्
चिक्षेपाखिलदिक्षु शिक्षितरिपुस्तेजः प्रशस्तोदयः॥[३१]

अभिलेखसे ज्ञात होता है कि विनयादित्यने अनेक सरोवरों और मंदिरोंका निर्माण कराया था। हसन जिलेके वेल्लूर हुगलीके अन्तर्गत तोड्डुसे प्राप्त सन् १०६२ ई० के एक त्रुटित अभिलेखमें बताया है कि उत्तरायण संक्रमणके पवित्र अवसरपर विनयादित्यने मूल संघके जैनाचार्य अभयचन्द्रको भूमि दान दिया। चिक्कमंगलूर ताल्लुकाके मत्तावरमें स्थित पार्श्वनाथ वसदिसे प्राप्त सन् १०६६ ई० के अभिलेखमें उत्कीर्णित है कि राजा विनयादित्य मत्तावर आये और पहाड़पर स्थित वसदिके दर्शनार्थ गये। उन्होंने लोगोंसे पूछा कि आपने गाँवमें मन्दिर न बनवा कर इस पहाड़ीपर क्यों बनवाया? माणिक सेठीने उत्तर दिया—"हमलोग निर्धन हैं। अतः आपसे गाँवमें मन्दिर बनवानेकी प्रार्थना करते हैं, क्योंकि आपकी लक्ष्मीका पारावार नहीं है।" माणिक सेठीके इस उत्तरसे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मन्दिरके लिए भूमि लेकर मन्दिर बनवा दिया और उसकी व्यवस्थाके लिए नाडली ग्रामकी आय प्रदान की। उसने वसदिके पासमें कुछ घर बनवानेकी आज्ञा दी। गाँवका नाम ऋषी हल्ली रखा गया और बहुतसे कर माफ कर दिये।[३२]

विनयादित्य चालुक्यवंशके विक्रमादित्य षष्ठ का सामन्त था। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी एरेयंगको चालुक्योंका दाहिना हाथ, यमका अवतार और मालवराजकी धारा नगरीका विध्वंसक कहा गया है। हले बेलगोलसे प्राप्त एक अभिलेखमें होयसल नरेश विनयादित्यकी कीर्तिका वर्णन आया है। साथ ही कल्वप्पु पर्वतकी वस्तियोंके जीर्णोद्धार तथा आहारदान आदिके लिए अपने

३१ जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख सं० ५६, पृ० १२४
३२ मिडीयेवल जैनिज्म, पृ० ७५ तथा दक्षिण भारतमें जैनधर्म, पृ० १०६

गुरु मूलसंघ देशीयगण कुन्दकुन्दान्वयके देवेन्द्र सैद्धान्तिक और चतुर्मुख देवके शिष्य गोपनन्दि पण्डित देवको राचनहल्लके दान दिये जानेका उल्लेख है। अभिलेखमें बताया है कि विनयादित्य चूड़ामणि सम्यक्त्व चूड़ामणि था और उसने जैनधर्मके उत्थानके लिए जीर्णोद्धार, मन्दिर व्यवस्था हेतु ग्रामदान आदि कार्य किये थे।

एरेद मनुजंगे सुरभूमिरुहं शरणेन्दवंगे कुलिशागारं।
परबनितेगनिलतनेयं धुरदोल्पोणर्दगेमित्तु विनयादित्यं ॥

× × ×

बलिदडेमलेदडे मलपर तलेयोल्बालिडुवननुदितमयरसवसदिं।
बलियद मलेयद मलपर तलेयोल्कैयिडुबनोडने विनयादित्यं ॥[३३]

होयसल नरेशोंमें विष्णुवर्धन भी जैन शासन का प्रभावक हुआ। उसने जैनगुरु श्रीपाल त्रैविद्य देवका सन्मान किया, मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया एवं व्यवस्थाके हेतु दान दिया। वेल्लूरके एक अभिलेखमें मल्लि जिनालयको भी दान देनेके उल्लेख है। इससे इस बातकी पुष्टि होती है कि ११२६ ई० में भी राजा विष्णुवर्धन जैन धर्म का अनुयायी था। हले-बीडके निकट बस्ति हल्लिके पार्श्वनाथ जिनालयसे प्राप्त अभिलेखसे ज्ञात होता है कि विष्णुवर्धनने हलेबीडके पार्श्वनाथ चैत्यालयके लिए दान दिया था।

अनेक सामन्तोंने भी जैनधर्म के अभ्युदय के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। राष्ट्रकूट सामन्त लोकादित्य ने शक ९वीं शताब्दी में ग्रन्थ निर्माण, मन्दिर निर्माण एवं जीर्णोद्धार आदिके कार्योंमें पूर्ण योगदान दिया है। यह बंकेयरसका पुत्र था और राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय अकालवर्ष के शासनके अन्तर्गत वनवास देशके बंकापुरका शासक था। इसके संरक्षणमें लोकसेनने गुणभद्र कृत उत्तर पुराणके अन्तमें प्रशस्ति लिखी है। प्रशस्ति के ३२ से ३६वें तकके पद्यमें कहा है कि जब अकालवर्षके सामन्त लोकादित्य बंकापुर राजधानी के सारे बनवास देशका शासन करते थे तब शक संवत् ८२० में इस पुराणकी पूजा की गयी।[३४] इससे सिद्ध होता है कि लोकसेन गुणभद्रका प्रमुख शिष्य था और लोकादित्यने जैनधर्मकी वृद्धिमें योगदान दिया था।

दक्षिण भारतमें जैन धर्म को सुदृढ़ बनानेमें जिनदत्त रायका भी हाथ है। इसने जिनदेवके अभिषेकके लिए कुम्मसिकेपुर गाँव प्रदान किया था। तोला

---

३३ जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख सं० ४९२, पृ० ३०५

३४ जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १४२

पुरुष विक्रमशान्तरने सन् ८९७ ई० में कुन्दकुन्दान्वयके मौनी सिद्धान्त भट्टारकके लिए वसतिका निर्माण कराया था। और उसे बाहुबलिको भेंट कर दिया था। भुजबल शान्तरने अपनी राजधानी पोम्बुच्चमें भुजबल शान्तर जिनालयका निर्माण कराया था और अपने गुरु कनकनन्दि देवको हरबरि ग्राम प्रदान किया था। उसका भाई नन्नि शान्तर भी जिन चरणोंका पूजक था। वीर शान्तर के मन्त्री नगुल रसने भी अजितसेन पण्डित देवके नामपर एक बसदिका शिलान्यास कराया था। यह नई बसदि राजधानी पोम्बुच्चमें पंच बसदिके सामने बनबाई गयी थी। भुजबल गंग पेरम्माडि वर्मदेव (सन् १११५ ई०) मुनिचन्द्रका शिष्य था और उसका पुत्र नन्निम गंग (सन् ११२२ ई०) प्रभाचन्द्र सिद्धान्तका शिष्य था। शिमोगा जिलेके कल्लूर गुड्डमें सिद्धेश्वर मन्दिरके पाससे प्राप्त एक अभिलेखमें भुजबल गंग वर्मदेवके धार्मिक कृत्यों का रोचक वर्णन दिया है। उसने एक बसदिका निर्माण कराकर उसे कुछ ग्राम प्रदान किये थे। इस बसदिके सम्बन्धमें बताया है—"यह वही बसदि है जिसकी स्थापना गंगवंशके संस्थापक दडिग और माधवने की थी तथा जिसे गंगराजाओंने बराबर भेंटें प्रदान की थीं। भुजबल गंगके समयमें यह बसदि समस्त बसदियोंमें प्रधान मानी जाती थीं। ११२२ ई० में उसके पुत्र नन्निय गंगने उसे पाषाणसे निर्मित कराया और भूमि प्रदान की। नन्निय गंगने जैन धर्मकी अत्युन्नतिके लिए २५ चैत्यालयोंका निर्माण कराया था। उसके लगभग ५० वर्ष पश्चात् सन् ११७३ ई० में हुए शान्तरको जिनदेवके चरण कमलोंका मधुकर कहा है।

११वीं शताब्दीमें कोंगालवोंने जैन धर्मकी सुरक्षा और अभिवृद्धिके लिए अनेक कार्य किये हैं। सन् १०५८ में राजेन्द्र कोंगालवने अपने पिताके द्वारा निर्मापित वस्तिको भूमि प्रदान की थी। राजेन्द्र कोंगालवका गुरु मूलसंघ काणूर गण और तगरिगल गच्छका गण्ड विमुक्त सिद्धान्त देव था। उसके लिए राजेन्द्रने चैत्यालयका भी निर्माण कराया था और उसे भूमि प्रदान की थी। इस वंश के राजाओंने सत्यवाक्य जिनालयका निर्माण कराया था और उसके लिए प्रभाचन्द्र सिद्धान्तको गाँव प्रदान किया था।[३५] सन् ११६५ ई० के दो अभिलेख नेमीश्वर बस्तिमें प्राप्त हैं। उनमें विजयादित्यके राज्यका और सेनापति कालनके द्वारा उसी वर्षमें उस बसदि को बनवानेका उल्लेख है तथा यापनीय संघके पुन्नाग वृक्ष मूल गणका और जैन धर्मके संरक्षक रट्टराज कार्त-

[३५] दक्षिण भारत में जैनधर्म, पृ० ११३

वीर्यका भी उसमें उल्लेख है। शिलालेखमें बस्तिके निर्माण करनेका कारण भी लिखा है। कालन अपने स्त्री-पुत्रादिके साथ आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता था। एक दिन उसे लगा कि धर्म ही इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है और उसने नेमीश्वर बस्तिका निर्माण कराकर उसके निमित्तसे अपने गुरु कुमारकीर्ति त्रैविद्यके शिष्य पुन्नाग वृक्ष मूल गणके महामण्डलाचार्य विजयकीर्तिको भूमि प्रदान की। उसकी आयसे साधुओं और धार्मिकोंको भोजन तथा आवास दिया जाता था। उसकी कीर्तिको सुनकर रट्टवंशका राजा कार्तवीर्य उसे देखनेके लिए आया और उसने मन्दिरके जीर्णोद्धार के निमित्त भूमि प्रदान की।

नागर खण्डके सामन्त लोक गाबुण्डने सन् ११७१ ई० में एक जैन मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी अष्टप्रकारी पूजाके लिए मूलसंघ काणूर गण तिन्तीणीगच्छके मुनि चन्द्रदेवके शिष्य भानुकीर्ति सिद्धान्तदेवको भूमि प्रदान की थी। १३वीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें कुची राजाका नाम भी उल्लेखनीय है। यह पद्मसेन भट्टारकका शिष्य था। इसने अपने गुरुके उपदेशसे जिनालयका निर्माण कराया और उसे भूमि, दूकान तथा उद्यान प्रदान किये। यह मन्दिर मूलसंघ सेनगणके पोगलगच्छसे सम्बद्ध था।

जैन धर्मके संरक्षक और उन्नतिकारकोंमें वीरमार्तण्ड चामुण्डरायका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसका समय ई० सन् की १०वीं शताब्दी है।

चामुण्डरायने अपने पुराण में लिखा है कि उच्चंगीके किलेकी विजयके उपलक्ष्यमें मारसिंहने रणरंगसिंहकी उपाधि धारण की थी और चामुण्डरायको वीरमार्तण्डकी उपाधिसे विभूषित किया गया था। वीरतापूर्ण कार्यों के उपलक्ष्यमें रायमल्ल चतुर्थकी ओरसे समर धुरन्धर, वैरि-कुल काल-दण्ड, भुज-विक्रम आदि उपाधियाँ चामुण्डरायको प्राप्त हुई थीं। चामुण्डरायकी शक्ति-निष्ठा और धर्म प्रेमके कारण उसे सत्य युधिष्ठिर गुण बंकाव, सम्यक्त्व रत्नाकर, शौचाभरण, गुणरत्न भूषण, कविजन शेखर जैसी उपाधियाँ भी प्राप्त थी। चामुण्ड रायके गुरुका नाम अजितसेन था। और वह नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीका भी स्नेह भाजन था। नेमीचन्द्रने अपने गोम्मटसारकी रचना चामुण्डरायके उद्देश्यसे ही की थी। चामुण्डराय बड़ा उदार दानी था। उसने जैन धर्मके लिए जो कुछ किया, इसके कारण वह भारतके इतिहासमें अमर है। श्रवण वेलगोलामें गोम्मटेश्वरकी प्रसिद्ध मूर्तिकी स्थापना उसी के द्वारा हुई है। यह मूर्ति ५६ फीट ऊँची है।

श्रवण वेलगोलाकी छोटी पहाड़ी पर भी चामुण्डरायने एक बसदि बनवायी थी। उसके पुत्र जिनदेवण्णने भी एक बसदिका निर्माण कराया था। प्रसिद्ध कन्नड़ कवि रन्नको भी चामुण्डरायने आश्रय दिया था। चामुण्डराय बसतिके मण्डपमें जो अभिलेख उत्कीर्ण है उससे चामुण्डरायके कार्योंपर प्रकाश पड़ता है। एक अभिलेखमें चामुण्डरायका निर्देश करते हुए बताया है—

यस्मिंश्चामुण्डराजो भुजबलिनमिनं गुम्मटं कर्म्मठाग्रं
भक्त्या शक्त्या च मुक्त्येर्जित-सुर-नगरे स्थापयद्भद्रभद्रो।
तद्वत्काल-त्रयोत्थोज्वल-तनु-जिन-बिम्बानि नान्यानि चान्यः
कैलासे शीतशाली त्रिभुवन-विलसत्कीर्ति-चक्रीव चक्रे ॥[३६]

विष्णुवर्धनके सेनापति बोप्पने भी जैनधर्मके अभ्युत्थानके लिए महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। बोप्प गंगराजका ज्येष्ठ पुत्र था। उनकी पत्नी भानुकीर्ति देवकी शिष्या थी और उनका पुत्र ऐच भी दण्डाधीश था। उसने श्रवण-वेलगोलामें मन्दिरोंका निर्माण कराया और बेलगोलाके मूल स्थान गंगेश्वरको भूमि प्रदान की। सन् ११३५ ई० में उसने सल्लेखना पूर्वक मरण किया।

सेनापति हुल्लने श्रवणबेलगोलामें चतुर्विंशति जिनालयका निर्माण कराया। यह निर्माण सम्भवतः सन् ११५९ ई० में हुआ था। जब राजा नरसिंह द्वितीय अपनी विजय यात्राके लिए उधरसे गया तो उसने बड़े आदरके साथ गोम्मटदेव और पार्श्वनाथकी मूर्त्तियोंके तथा जिनालयके दर्शन किये और जिनालयकी पूजाके लिए सवणेरु ग्राम प्रदान किया।[३७]

हुल्लकी सम्यक्त्व चूड़ामणि उपाधिके आधारपर जिनालयको भव्य चूड़ामणि नाम प्रदान किया और हुल्लने महामण्डलाचार्य नयकीर्ति सिद्धान्त चक्रवर्तीको चतुर्विंशति जिनालयका आचार्य बनाया जो सजणेरुकी आयका उपयोग श्रवणबेलगोला स्थानके जिनालयोंकी मरम्मत तथा पूजा आदिमें करते थे। सन् ११७५ ई० में हुल्लने राजा बल्लाल द्वितीयसे सबणेरुके साथ बेक्क और कगेरे नामक ग्रामोंको प्राप्त किया तथा इन्हें उक्त जिनालत एवं गोम्मट-देवकी पूजाके भूमि लिए प्रदान किया।

सेनापति हुल्लने श्रवणबेलगोलाके समान केल्लंगेरे, बंकापुर और कोप्पको

---

३६ जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख सं० १०५, पृ० २०३, पद्य ४५

३७ वही, अभिलेख सं० ९०

भी दान दिया। केल्लंगेर एक प्राचीन तीर्थस्थान था। इसकी स्थापना गंग राजाओंने की किन्तु समयके प्रभावसे यह खण्डहर हो गया था। अतएव हुल्लने वहाँ एक सुन्दर जैन मन्दिरका निर्माण काराया। यहाँ उसने तीर्थंकरोंके पाँच कल्याणकोंकी भावनासे पाँच विशाल बस्तियाँ बनवायीं, हुल्लके गुरु देवकीर्ति देवने केलंगेरेमें प्रतापपुर बस्ति बनवायी थी। हुल्लने उसे नवीन रूप दिया और श्रवणवेलगोलासे एक मीलकी दूरीपर स्थित जिननाथपुर ग्राममें एक भिक्षागृह बनवाया। बंकापुरमें उसने जीर्ण शीर्ण मन्दिरका नवनिर्माण कराया। हुल्लका समस्त समय जिनमन्दिरोंके निर्माण, जिनदेवकी पूजा, जैन साधुओंको आहारदान और जैन शास्त्रोंके श्रवणमें ही व्यतीत होता था।

नरसिंहके सेनापति शान्तियण्णने एक बसदिका निर्माण कराया और उसकी व्यवस्थाके लिए भूमि प्रदान की। यह वासुपूज्य सिद्धान्तदेवके शिष्य मल्लिसेन पण्डितका शिष्य था। राजा नरसिंहके ईश्वर चमूपतिने तुमकुर ताल्लुकाके मन्दार ह्लिलकी बसदिका जीर्णोद्धार कराया था।

राजा नरसिंहके पुत्र बल्लाल द्वितीयके सेनापतियोंमें रेचिमय्य प्रसिद्ध है। इसका विशेष वर्णन शिकारपुर ताल्लुकाके चिक्क मागडिमें वंशबण्ण मन्दिरके प्रांगणमें एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण सन् ११८२ ई० के अभिलेखमें आया है। बताया है कि एक बार रेचिमय्य राजा बोप्पदेव और शंकर सामन्तके साथ मागडिके जिनेश्वरकी पूजाके लिए आया। पूजन करनेके पश्चात् रेचिमय्य दण्डाधीशने शंकर सामन्त द्वारा निर्मापित उस जिनमन्दिरको देखा और बहुत प्रसन्न हुआ तथा तीन पीढ़ियोंके लिए तलब ग्राम इस मन्दिरको प्रदान किया।[३८]

रेचिमय्यके कार्योंमें सबसे अधिक स्थायी कार्य आरसियकेरेमें सहस्र कूट चैत्यालयका निर्माण कराना है। इस चैत्यालयमें उत्कीर्ण अभिलेखमें बताया है कि जब होयसल नरेश और बल्लाल देव राजधानी दोरसमुद्रमें रहते हुये राज्य करते थे, आरसियकेरेके निवासियोंकी रत्नत्रय धर्ममें दृढ़ता सुनकर कलचुरिकुलके सचिवोत्तम रेचिमरसने बल्लाल देवके चरणोंमें आश्रय पाकर आरसियकेरेमें सहस्रकूट जिनालयकी स्थापना की। उन भगवान्की अष्टविध पूजन, पुजारी और सेवकोंकी आजीविका तथा मन्दिरकी मरम्मत के लिए राजा बल्लालने हन्दरहालु ग्राम प्राप्त करके उसे अपने वंशके गुरु सागरनन्दि

---

३८ वही, तृतीय भाग, अभिलेख सं० ४०० तथा मिडियेबल जैनिज्म, पृ० १४७-१४८

सिद्धान्तदेवको सौंप दिया। इसी अभिलेखमें आगे बताया है—राच द्वारा स्थापित सहस्रकूट जिनालयके लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा कर आरसिय-केरेमें एक मन्दिर बनवाया·····इस जिनालयको समस्त सात करोड़ लोगोंकी सहायता होनेसे इसका नाम एल्ल कोटि जिनालय रखा गया। इस चैत्या-लयके लिए एक हजार कुटुम्बसे जमीन खरीदी गयी और राजा बल्लालने उस जमीनको कर मुक्त कर दिया।[३९]

इस अभिलेखसे स्पष्ट है कि रेचिमय्यने जैनधर्मके उत्थानके हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। बल्लाल द्वितीयके मन्त्री नागदेवने भी श्रवण वेलगोलाके पार्श्वनाथ देवके सामने एक रंगशाला तथा पत्थरके चबूतरेका निर्माण कराया था। इस प्रकार दक्षिण भारतमें अनेक महापुरुषोंने मन्दिर निर्माण, ग्रामदान एवं तीर्थ जीर्णोद्धार द्वारा जैनधर्मकी सेवा की है।

[क्रमशः

---

[३९] वही, अभिलेख सं० ४६५ अरसियकेरेका संस्कृत और कन्नड़ मिश्रित अभिलेख।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

जम्बूद्वीपाधिपति यक्ष तब वहाँ जाकर कहने लगा, 'मुग्धों, इस प्रकार जड़ बनने की चेष्टा तुम लोग क्यों कर रहे हो ? लगता है किसी अप्रामाणिक भ्रान्त मतावलम्बी ने अकाल मृत्यु के लिए तुम लोगों को ऐसे कार्य में प्रवृत्त किया है। अतः यह दुराग्रह छोड़ो और मुझ से कुछ मांगो। मैं तुम लोगों की इच्छा पूर्ण करूँगा।' इतना कहने पर भी जब वे मौन ही रहे तब क्रुद्ध होकर वह यक्ष उनसे बोला, 'मूर्खों, अपने सम्मुख खड़े देव की उपेक्षा कर तुम लोग और किसका ध्यान कर रहे हो ?' ऐसा कहकर उस देव ने भ्रकुटि द्वारा अपने अनुचरों को उनपर आक्रमण करने का संकेत किया। तब वे लोग किल-किल करते हुए विविध रूप धारण कर पर्वत शिखर और बड़ी-बड़ी शिलाओं को लाकर उनके सम्मुख फेंकने लगे। कोई सर्प बन कर चन्दन वृक्ष वेष्टन करने कि भाँति उनकी देह से लिपट गया। कोई सिंह बनकर उनके सामने गरजने लगा। कोई भालू, बाघ, बन्दर और बिलाव का रूप धारण कर उन्हें डराने लगा। तब भी तीनों भाई जरा भी क्षुब्ध नहीं हुए। तब वे कैकसी, रत्नश्रवा एवं उनकी बहन चन्द्रनखा का प्रतिरूप सृष्टिकर उन्हें बद्ध अवस्था में उनके सामने लाकर पटक दिया। माया निर्मित कैकसी रत्नश्रवादि तब अश्रुजल प्रवाहित करते हुए इस प्रकार विलाप करने लगे—

'निषाद जैसे पशुओं को बाँध कर ले जाता है उसी प्रकार ये लोग हमलोगों को बाँध लाए हैं। ये निर्दयी तुम्हारे सम्मुख हम पर अत्याचार कर रहे हैं और तुमलोग शान्त हो ? हे दसस्कन्ध, उठो उठो, हमारी रक्षा करो। एक लक्ष्य होकर तुमलोग क्या हमारी उपेक्षा कर रहे हो ? हे दसस्कन्ध, जब तुम छोटे थे तब तुमने स्वयं ही महामाला धारण कर ली थी। आज तुम्हारा वह भुजबल और दर्प कहाँ गया ? हे कुम्भकर्ण, हमलोगों की ऐसी दीनावस्था देखकर भी तुम किस प्रकार संसार विरक्त की भाँति हमलोगों के प्रति उदासीन हो गए हो ? हे विभीषण, आज तक तुम एक मुहूर्त के लिए भी हमारी भक्ति से विरत नहीं हुए तो क्यों आज मेरे दुर्भाग्य ने तुम्हारी बुद्धि को विभ्रान्त कर दिया है।'

इस प्रकार के करुण विलाप को सुनकर भी जब वे ध्यान से विचलित नहीं हुए तब यक्ष के अनुचरों ने उनके सम्मुख ही उनकी हत्या कर डाली। इससे

भी जब वे विचलित नहीं हुए मानो उनके सम्मुख उनकी हत्या हुई ही नहीं, तब वे माया की सहायता से विभीषण और कुम्भकर्ण का मस्तक काटकर रावण के सम्मुख और रावण का मस्तक काटकर विभीषण और कुम्भकर्ण के सम्मुख फेंक दिया। रावण का माथा देखकर दोनों भाई कुछ क्रुद्ध हुए। इसका कारण था उनकी बड़ों के प्रति भक्ति, अल्पसत्व नहीं। परमार्थ के ज्ञाता रावण ने इस अनर्थ की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया बल्कि विशेष रूप से दृढ़ होकर पर्वत की भाँति स्थिर हो गया। तब आकाश में 'साधु साधु' शब्द गूँज उठा। इस देववाणी को सुनकर यक्ष के अनुचर भयभीत होकर वहाँ से भाग छूटे।

उसी समय आकाश से अवतरित होकर दिशा-विदिशाओं को आलोकित करती एक हजार विद्याएँ रावण के सम्मुख स्थित होकर रावण को सम्बोधित कर बोली—'हम तुम्हारे अधीन हैं।'

प्रज्ञप्ति, रोहिणी, गौरी, गान्धारी, नभःसंचारिणी, कामदायिनी, काम-गामिनी, अणिमा, लघिमा, अक्ष्योभ्या, मनःस्तम्भनकारिणी, सुविधाता, तपोरूपा, दहनी, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिवारात्रि विधायिनी, वज्रोदरी, क्षमाकृष्टि, अदर्शनी, अजरामरा, अनलस्तम्भनी, तोयस्तम्भनी, गिरिदारिणी, अवलोकिनी, बह्नि, घोरा, वीरा, भुजंगिनी, वारिणी, भुवना, अवन्ध्या, दारुणी, मदनाशनी, भास्करी, रूपसम्पन्ना, रोशनी, विजया, जया, वर्द्धनी, मोचनी, वाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शान्ति, कौवेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्साही, चण्डा, भीति, प्रधर्षिणी, दुर्निवारा, जगत्कम्पकारिणी, भानुमालिनी आदि एक हजार महाविद्याएँ पूर्व जन्म की सुकृति के फलस्वरूप महात्मा रावण को अल्प दिनों में ही सिद्ध हो गयीं। सम्वृद्धि, जृम्भणी, सर्वहारिणी, व्योमभामिनी व इन्द्राणी ये पाँच विद्याएँ कुम्भकर्ण ने सिद्ध की। सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता और आकाशगामिनी ये चार विद्याएँ विभीषण ने सिद्ध कर लीं। जम्बूद्वीप के अधिपति ने रावण के निकट आकर क्षमा मांगी। महान पुरुषों के प्रति अपराध किया हो तो (अपनी भलाई का) उपाय क्षमा प्रार्थना ही है। पूर्व कृत विघ्न के प्रायश्चितस्वरूप उसने रावण के लिए वहाँ स्वयंप्रभ नामक नगर बसा दिया। विद्या सिद्धि का संवाद पाते ही उनके माता-पिता, बहन और आत्मीय स्वजनों ने वहाँ आकर उनको सम्बर्द्धित किया। माता-पिता की दृष्टि में अमृतवृष्टि और आत्मीय स्वजनों के हृदय में आनन्द-उल्लास उत्पन्न कर वे वहाँ रहने लगे। तत्पश्चात्

रावण ने छः दिनों का उपवास कर दिक्-समूह पर विजयलाभ करने के लिए उपयोगी चन्द्रहास नामक श्रेष्ठ खड्ग प्राप्त की।

उस समय वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी की अलंकार रूप सुर-संगीत नामक नगरी में मय नामक राजा राज्य करता था। समस्त गुणों की निवास-रूप उसकी पत्नी का नाम हेमवती था। हेमवती के गर्भ से उत्पन्न उसकी कन्या का नाम था मन्दोदरी। जब वह पूर्ण यौवना हुयी तब मय उसके योग्य पति खोजने लगा। समस्त विद्याधर कुमारों के रूप गुणों की तुलना कर भी उनमें वह उसके उपयुक्त वर नहीं पा सका। इससे वह बहुत ही चिन्तित था। एक दिन मंत्री उससे आकर बोला, 'महाराज, आप चिन्तित न हों। रत्नश्रवा का पुत्र दसमुख बलवान और रूपवान है। वह अपनी कन्या के लिए उपयुक्त वर है। पर्वतों में जैसे मेरु है उसी प्रकार विद्याधर कुमारों के मध्य सहस्र विद्या का साधक, वह कुमार है। देव भी उसे चलित नहीं कर सकते।'

यह सुनकर मय बोला, 'ठीक है।' फिर वह मन्दोदरी को रावण को अर्पित करने के लिए जाति, बन्धु, परिवार, सैन्य सहित स्वयंप्रभ नगरी में पहुँचा। जाने के पहले ही अपने आने की खबर उनलोगों को दे दी थी। वहाँ सुमाली आदि ज्येष्ठ पुरुषों ने मन्दोदरी के साथ रावण का सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। सुमाली और मय ने एक शुभ दिन देखकर खूब धूम-धाम से उनका विवाह-संस्कार पूर्ण कर दिया। विवाहोत्सव के पश्चात मय परिवार सहित अपने नगर को लौट गया। रावण सुन्दरी मन्दोदरी के साथ आनन्द-पूर्वक क्रीड़ा करने लगा।

एक बार रावण मेघरथ पर्वत पर क्रीड़ा करने गया। पर्वतों पर मेघों के टिक जाने से लगता था मानों वे पंखयुक्त हों और अभी उड़ जायेंगे। क्षीरोद सागर में जैसे अप्सराएँ स्नान करती हैं उसी प्रकार वहाँ एक सरोवर में एक हजार खेचर कन्याओं को स्नान करते देखा। उन्होंने भी रावण को देखा। पद्मिनियां जिस प्रकार सूर्य को देखकर विकसित हो जाती हैं उसी प्रकार वे अपने नेत्र रूपी कमलों को विकसित कर पति रूप में रावण को पाने की कामना से सानुराग उसे देखने लगीं। तदुपरान्त काम पीड़िता वे लज्जा का परित्याग कर उसके पास गयीं और बोलीं, 'आर्य, आप हमलोगों को पत्नी रूप में ग्रहण करें।' उनमें सर्वश्री और सुरसुन्दर की कन्या पद्मावती, मदनवेगा और बुध की कन्या अशोकलता, सन्ध्या एवं कनक की कन्या विद्युतप्रभा और अन्य सभी लोक प्रसिद्ध वंश की कन्याएँ थीं। इन मुग्धा कन्याओं के साथ मुग्ध बने रावण ने उसी जगह गान्धर्व विवाह कर लिया।

कन्याओं के साथ आगत आरक्षकों ने यह देखकर अपने-अपने प्रभु को निवेदन किया कि कोई व्यक्ति कन्याओं को विवाह कर लिए जा रहा है। यह सुनकर खेचरेन्द्र अमरसुन्दर क्रोध से उद्दीप्त बना कन्याओं के पिताओं के साथ रावण को मारने के लिए उसके पीछे दौड़ा। उन्हे आते देखकर नववधु कन्याएँ भयभीत होकर रावण से बोलीं, 'हे नाथ, हे स्वामिन्, विमान को द्रुतगति से चलाइए, देरी मत करिए। कारण अमरसुन्दर अकेला ही अजेय है फिर अभी तो उसके साथ कनक, बुध आदि बहुत से योद्धा हैं।' यह सुनकर रावण जरा हँसकर बोला, 'डरो मत तुमलोग, अभी, जैसे सर्प के साथ गरुड़ युद्ध करता है, उसी प्रकार उनके साथ मुझे युद्ध करते देखोगी।' रावण जब यह कह रहा था उसी समय पहाड़ को आच्छादित कर पहाड़ से जैसे मेघ उड़कर आते हैं उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्रों से रावण को आच्छादित कर खेचर सेना दौड़ी। शक्तिधर रावण ने अपने शस्त्रों द्वारा उनके शस्त्रों को काटकर न मारने की इच्छा से प्रस्वापन अस्त्र के द्वारा उन सबको मोहित कर नागपाश में पशुओं की तरह आबद्ध कर दिया। खेचर कन्याओं ने अपने-अपने पिता की जीवन-भिक्षा मांगी। तब रावण ने सबको मुक्त कर दिया। खेचरगण तदुपरान्त अपने-अपने नगर को लौट गए और रावण नव-विवाहिताओं को लेकर स्वयंप्रभ नगर को लौट गया। आनन्दित पुरवासियों ने रावण का स्वागत एवं अभ्यर्थना की।

कुम्भकर्ण का विवाह कुम्भपुर के राजा महोदर की पत्नी सुरूपनयना के के गर्भ से उत्पन्न तड़ित्माला के साथ हुआ। विद्युतमाला-सी कान्तियुक्त तड़ित्माला के स्तन पूर्ण कुम्भ के-से थे। विभीषण का विवाह वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी के ज्योतिषपुर के राजा वीर की पत्नी नन्दवती के गर्भ से उत्पन्न कन्या पंकजश्री के साथ हुआ। वह देवांगना-सी रूप सम्पन्ना और पंकज शोभा का अपहरण करने वाली पंकज-नयनी थी।

मन्दोदरी ने इन्द्र-से वैभव सम्पन्न और अद्भुत पराक्रमशाली इन्द्रजीत नामक पुत्र को जन्म दिया। उसके कुछ ही पश्चात् उसने मेघ की तरह नेत्रों को आनन्द देने वाले मेघवाहन नामक एक और पुत्र को जन्म दिया।

पिता के साथ वैश्रवण की शत्रुता की बात स्मरण कर विभीषण और कुम्भकर्ण बीच-बीच में वैश्रवण शासित लंका राज्य में उपद्रव करने लगे। इससे कुपित होकर वैश्रवण ने सुमाली के पास यह कहकर दूत भेजा—'रावण के छोटे भाई, तुम्हारे पुत्र कुम्भकर्ण और विभीषण को समझाकर लंका में

उपद्रव करने से रोको। ये दोनों दुर्मद युवक पाताल लंका से कूप-मंडुक की भाँति अपनी शक्ति का परिमाप किए बिना ही स्वयं को वीर समझकर जय-लाभ की इच्छा से मेरे राज्य में उपद्रव करते हैं। मैं बहुत दिनों से उनकी उपेक्षा करता आ रहा हूँ। ओ क्षुद्र, अब भी तूने उन्हें नहीं रोका तो उनके साथ तुझे भी वहाँ भेज दूँगा जहाँ माली गया है। तूँ तो मेरी शक्ति से भलीभाँति परिचित है।'

दूत की यह बात सुनकर महा मनस्वी रावण क्रोधित होकर बोल उठा, 'कौन है यह वैश्रवण जो अन्य को कर देता है? जो दूसरे के आदेश से लंका में शासन करता है उसको ऐसी बात कहने में लज्जा भी नहीं आती? ओह कितनी धृष्टता है! तु दूत है अतः तेरी हत्या नहीं करूँगा। जा मेरे सामने से चला जा।

रावण की बात सुनकर दूत तत्काल वैश्रवण के पास लौट गया और सब कुछ ज्यों का त्यों कह सुनाया। क्रुद्ध रावण दूत के पीछे-पीछे अनुज और सैन्य सहित लंका पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़ा और दूत के द्वारा वैश्रवण को युद्ध का निमंत्रण भेजा। अप्रतिहत तूफान जैसे एक मुहूर्त में ही अरण्य को अस्त-व्यस्त कर डालता है उसी प्रकार रावण ने वैश्रवण की सेना को तहस-नहस कर डाला। वैश्रवण स्व-सेना की पराजय को अपनी पराजय समझकर एवं क्रोध शान्त होने पर सोचने लगा। कमल के विनष्ट होने पर जैसे सरोवर की, दाँत टूट जाने पर हस्ती की, शाखा भंग हो जाने पर वृक्ष की शोभा नहीं रहती या मणिहीन अलंकार की, चाँदनी रहित चन्द्र की, जलहीन मेघ की जो स्थिति होती है शत्रु द्वारा मान मर्दित होने पर उसकी भी वही स्थिति हो जाती है। धिक्कार है ऐसी स्थिति को! जिसका मान मर्दित हुआ है ऐसा व्यक्ति यदि उसी स्थिति में मुक्ति के लिए प्रयास करे तब वह यथार्थ स्थान पर पहुँच सकता है। अल्प परित्याग कर विशेष इच्छा करने वाला कभी लज्जास्पद नहीं होता। मैं अब यही करूँ। अनेक अनर्थों का मूल इस राज्य की अब मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। मैं मोक्ष मन्दिर के द्वार-सी दीक्षा ग्रहण करूँगा। यहाँ तक कि विभीषण और कुम्भकर्ण जिन्होंने मुझे नष्ट करने की चेष्टा की वे भी मेरे उपकारी हैं क्योंकि उनके कारण ही मुझे इस सन्मार्ग का बोध हुआ है। (मामा के पुत्र होने के कारण) रावण मेरा बान्धव ही तो था। अब अपने कार्य द्वारा भी वह मेरा बान्धव हुआ है। वह यदि युद्ध करने यहाँ नहीं आता तो ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि तो मुझे मिलती ही नहीं।

ऐसा सोचकर शस्त्र फेंककर वैश्रवण ने स्वयं ही दीक्षा ग्रहण कर ली और तत्व विचार में निमग्न हो गया। यह देखकर रावण ने उन्हें वन्दना की और करबद्ध होकर बोला—'आप मेरे अग्रज हैं। अनुज के अपराध को क्षमा करें। आप निःशंक होकर लंका पर राज्य करें। मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। कारण पृथ्वी विपुला है।'

उसी जीवन में मुक्ति का अधिकारी वैश्रवण ने प्रतिमा धारण कर रखी थी अतः रावण के कथन का प्रत्युत्तर नहीं दिया। उन्हें निःस्पृह देखकर रावण ने उनसे क्षमा प्रार्थना की और लंका एवं पुष्पक विमान पर अपना अधिकार कर लिया। तदुपरान्त विजय लक्ष्मीरूपा लता के पुष्प की तरह उसी विमान पर बैठकर वह सम्मेत शिखर पर अर्हत वन्दना के लिए गया। अर्हत वन्दना के पश्चात् नीचे उतरते समय रावण ने सैन्यदल के कोलाहल की भाँति वन्य हस्ती की गर्जना सुनी। उसी समय प्रहस्त नामक एक प्रतिहारी आकर रावण से बोला, 'हे देव, यह हस्तीरत्न आपका वाहन बनने के योग्य है।' यह सुनते ही रावण वहाँ गया और सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ दीर्घ एक हस्ती को देखा जिसके दाँत ऊँचे और दीर्घ थे। जिसके नेत्र मधु या दीपशिखा की भाँति पिंगल थे, जिसका कुम्भ-स्थल शैल-शिखर की तरह उन्नत और मदरूपी नदी का उद्गम स्थल था। रावण ने खेल ही खेल में उस हाथी को वश में कर लिया और उसकी पीठ पर चढ़कर बैठ गया। उसकी पीठ पर बैठा रावण ऐसा लग रहा था मानो ऐरावत पर इन्द्र बैठा हो। रावण ने उसका नाम रखा भुवनालंकार। उस हाथी को आलान स्तम्भ से बाँधकर उस रात वह वहीं रहा। दूसरे दिन सुबह जब वह सभासदों सहित सभा में बैठा था उसी समय द्वार रक्षक द्वारा सूचना देकर पवनवेग नामक एक विद्याधर ने उस सभा में प्रवेश किया। उसका समस्त शरीर अस्त्राघात से क्षत-विक्षत था। वह रावण को प्रणाम कर बोला—

'हे देव, किष्किंधी राजा का पुत्र सूर्य राजा और ऋक्षराज पाताल लंका से किष्किंधा गए थे। वहाँ यम की भाँति भयंकर प्राणों को संशय में डालने वाले यमराजा के साथ उनका तुमुल युद्ध हुआ। बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात् यम ने दोनों भाइयों को बाँधकर चोर की तरह कारागार में डाल दिया और उस कारागार को उसने वैतरणी पार के नरकावास में परिणत कर दिया है। वह वहाँ छेदन-भेदन कर दोनों भाइयों को अनुचरों सहित नाना प्रकार की नारकीय यन्त्रणा दे रहा है। हे राजन्, वे आपके

बहुत दिनों से सेवक है। उनका पराभव आपका पराभव है। अतः आप उन्हें मुक्त करें। आपकी आज्ञा अलंघ्य है।'

रावण बोला, 'तुम जो कुछ कह रहे हो वह ठीक है। आश्रयदाताओं की दुर्बलता के कारण ही आश्रित का पराभव होता है। मेरे नहीं रहने पर दुर्बुद्धि यम ने मेरे सेवकों को नीचतापूर्वक जो कारागार में डाल दिया है उसका प्रतिफल मैं उसे शीघ्र दूँगा।'

यह कहकर उग्र भुजबलों को धारण करने वाला रावण युद्ध करने की इच्छा से सेना लेकर दिक्पाल यम द्वारा रक्षित किष्किधा नगरी गया। वहाँ उन्होंने त्रपुपान, शिला-स्फालन, पर्शुच्छेद आदि महा दुःखदायी सात नरक देखे। उन्हीं नरकों में स्वयं के सेवकों को दुःख पाते देखकर उन्होंने वहाँ के आरक्षक परमाधर्मियों को गरूड़ जैसे सर्प को त्रासित कर देता है उसी प्रकार त्रासित किया और नरकावास भग्न कर सेवकों सहित अन्य बन्दियों को भी मुक्त कर दिया। महापुरुषों का आगमन किसका कष्ट दूर नहीं करता?

[क्रमशः

संकलन

|| प्रकृति को संतुलित रखने के लिए आवश्यक है मनुष्य की मूल वृत्तियों को उनके असली रूप में जानना-समझना ||

विकासशील मानव ने अपनी आवश्यकता का अतिक्रमण कर अपने विलास के लिए जब प्रकृति के खजाने को प्राप्त करने में अति कर दी वह असंयमित हो गया तभी से उसके सामने प्रदूषण, पर्यावरण-अशुद्धि, मिलावट, जीवन के अस्तित्व का संकट आदि समस्याएँ उपस्थित हुई हैं। स्पष्ट है कि पर्यावरण-प्रदूषण और मांसाहार नशे आदि व्यसनों का मूल कारण स्वयं मनुष्य है उसकी लुप्त होती हुई संवेदनशीलता और बढ़ती हुई उसकी तृष्णा-भावना है। इन दोनों विकृतियों ने प्रकृति को असंतुलित किया है। पदार्थों का स्वभाव बदलने का अर्थ है मनुष्य के भीतर का स्वभाव/धर्म बदल जाना। अतः प्रकृति को स्वस्थ/सन्तुलित रखने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मनुष्य की मूल वृत्तियों को उनके असली रूप में जाना-समझा जाय। मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य सम्बन्ध को जब तक दृढ़ नहीं किया जायेगा तब तक पर्यावरण-सन्तुलन सम्भव नहीं होगा।

—प्रेमसुमन जैन

प्राकृत विद्या, अप्रैल-दिसम्बर १९९१

|| जैन तत्वज्ञान एवं दर्शन के अध्ययन की समाज व्यवस्था करे ||

कहते हैं कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए गुरु गोविन्द सिंह ने हिन्दू परिवारों से एक-एक युवक सिक्ख के रूप में माँगकर सेना खड़ी की थी। जैन समाज के प्रत्येक परिवार से भी जैन विद्या, जैन तत्वज्ञान एवं प्राच्य भाषाओं के अध्ययन के लिए एक-एक युवक दिया जाय। सभी पुत्र अर्थोपार्जन में न लगाकर एक-एक पुत्र को ज्ञानोपार्जन के लिए समाज को दें। समाज इस क्षेत्र में पढ़ने वाले युवकों को अच्छी स्कॉलरशिप प्रदान करें। अध्ययन के बाद उनकी आजीविका की गारंटी दें और ऐसे विद्वानों को समादर दें। यदि ऐसा कुछ नहीं किया गया तो जैन समाज का बहुत बड़ा नुकसान होगा। जैन तत्वज्ञान, दर्शन और प्राच्य भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के लिए पूरे जैन समाज को संगठित रूप से प्रयत्न करना चाहिए।

—चन्दनमल चाँद

जैन जगत, फरवरी, १९९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

प्राकृत विद्या ॥ अप्रैल-दिसम्बर १९९२

इस अंक में है 'क्या है पर्यावरण संस्कृति ?' (शुभ्र पटवा), 'पर्यावरण : जैन दृष्टिकोण' (डॉ० प्रद्युम्न कुमार), 'पर्यावरण-संरक्षण का धार्मिक आधार' (डॉ० प्रेम सुमन जैन), 'मानसिक प्रदूषण का प्रकृति पर प्रभाव' (डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल), 'पर्यावरण-प्रदूषण का व्यापक प्रभाव' (एम० सुनील कुमार नाहर), 'पर्यावरण-प्रदूषण : कौन जिम्मेवार ?' (डॉ० राजमल लोढ़ा), 'पर्यावरण-सन्तुलन : जैन धर्म का नजरिया' (सी० एन० संघवी), 'आचारांग : पर्यावरण का प्राचीनतम ग्रन्थ' (सुरेन्द्र बोथरा), 'पशु-पक्षियों के प्रति आदर की परम्परा' (पं० इन्द्रलाल शास्त्री), 'पर्यावरण-सन्तुलन : सह अस्तित्व से' (डॉ० निजामुद्दीन), 'विकास हो, किन्तु विनाश रहित' (अशोक कुमार जैन), 'पर्यावरण का प्राण शाकाहार' (लक्ष्मीचन्द्र सरोज), 'पर्यावरण-संतुलन : जैन वाङ्मय की दृष्टि' (कुन्दनलाल जैन), 'लोक जीवन में पर्यावरण भावना' (डॉ० महेन्द्र भानावत), 'वृक्ष साक्षी है मानवीय व्यवहार के' (गीता जैन), 'अहिंसक जीवन पद्धति है शाकाहार' (डॉ० नेमीचन्द जैन), 'पर्यावरण-संतुलन और सात्विक आहार' (डॉ० रामजी सिंह), 'पोषक तत्वों का भंडार शाकाहार' (डॉ० ज्योति लहेरी), 'शाकाहार परहित और स्वहित भी' (आ० रजनीश), 'शाकाहार पर सार्थक चर्चा' (उपाध्याय मुनि गुप्तिसागर), 'पशुओं का उत्पीड़न नहीं, संरक्षण' (पन्नालाल मूँधड़ा), 'प्राकृतिक संरचना और मांसाहार' (एल० के० सम्यक्त सागर), 'अण्डा न अखाद्य और न शाकाहार' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'अण्डा सजीव हो या निर्जीव : अखाद्य नहीं' (जशकरण डागा), 'मांसाहार निषेध बनाम शाकाहार' (डॉ० रमेशचन्द्र जैन), 'विदेशों में शाकाहार-चिन्तन' (डॉ० नन्दलाल जैन), 'अन्तर्यात्रा का प्रथम चरण : सम्यक्-आहार' (आचार्य पुष्पदन्त सागर), 'आहार नियमों की अनुपालना' (डॉ० नरेन्द्र भानावत), 'संस्कृति रक्षा : अभक्ष्याभक्ष्य विचार से' (आचार्य विद्यानंद), 'जैन शास्त्रों में आहार विचार' (डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव), 'हिन्दी कवियों का शाकाहार चिन्तन' (डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया), 'स्वास्थ्यिक आहार : शाकाहार' (आचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन), 'श्रावकचर्या एवं शाकाहार' (चाँदमल कर्णावट), 'जिन्हें शाकाहार का परिज्ञान है' (सुरेश सरल), 'मानवीय आहार :

शाकाहार' (ईश्वर दयाल), 'भोजन संयम : स्वास्थ्य और तप' (डॉ० शेखरचंद्र जैन), 'क्रूर भावों का उन्मूलन शाकाहार से' (पं० जगमोहन लाल शास्त्री), 'शाकाहार की श्रेष्ठता' (यशपाल जैन), 'शाकाहार : मानस में निर्मलता का संचार' (डॉ० आदित्य प्रचंडिया), 'रात्रि-भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक' (डॉ० डी० सी० जैन), 'नारी धुरी है सात्विक जीवन की' (आर्यिका विशुद्धमति), 'शाकाहार प्रसार में नारी की भूमिका' (डॉ० शान्ता भानावत), 'बहुआयामी शाकाहार' (कमल किशोर जैन), 'शाकाहारियों का आत्मालोचन' (महावीर मिण्डा), 'शाकाहार एवं पर्यावरण पर प्रेरक साहित्य' (कल्पना जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND.

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-253
Vol. XV No. 11 TITTHAYARA March 199
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73